संस्कृत साहित्य सौरभ

किरातार्जुनीय

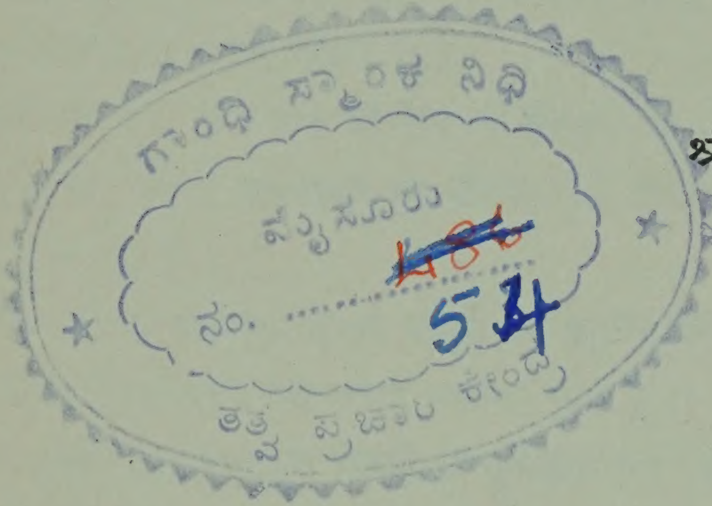


संस्कृत-साहित्य-सौरभ

१३

भारवि-कृत

किरातार्जुनीय



श्री ज्योतिप्रसाद निर्मल
द्वारा
कथा-सार

विष्णु प्रभाकर
द्वारा
सम्पादित

१९५६

सत्साहित्य-प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

दूसरी बार : १९५६
मूल्य
छः आना

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दिल्ली

संस्कृत-साहित्य-सौरभ

हमारा संस्कृत-साहित्य अत्यन्त समृद्ध है। भारतीय जीवन का शायद ही कोई ऐसा अंग हो जिसके संबंध में मूल्यवान सामग्री का अनंत भंडार संस्कृत-साहित्य में उपलब्ध न हो। लेकिन खेद की बात है कि संस्कृत से अपरिचित होने के कारण हिन्दी के अधिकांश पाठक उससे अनभिज्ञ हैं। उनमें जिज्ञासा है कि वे उस साहित्य से परिचय प्राप्त करें; परंतु उसका रस वे हिन्दी के द्वारा लेना चाहते हैं।

पाठकों की इसी जिज्ञासा को देखकर संस्कृत के महाकवियों, नाटककारों आदि की प्रमुख रचनाओं को छोटी-छोटी कथाओं के रूप में हिन्दी में प्रस्तुत कर रहे हैं।

पुस्तकों की भाषा बहुत सरल बनाने का प्रयत्न किया गया है। पाठकों की सुविधा के लिए टाइप भी मोटा लगाया गया है।

इन पुस्तकों का सम्पादन हिन्दी के सुलेखक श्री विष्णु प्रभाकर ने बड़े परिश्रम से किया है।

इस माला में कई पुस्तकें निकल चुकी हैं और आगे निकल रही हैं। आशा है, हिन्दी के पाठकों को इन पुस्तकों से संस्कृत-साहित्य की महान रचनाओं की कुछ-न-कुछ झांकी अवश्य मिल जायगी। पूरा रसास्वादन तो मूल ग्रंथ पढ़कर ही हो सकेगा। यदि इन पुस्तकों के अध्ययन से मूल पुस्तक पढ़ने की प्रेरणा हुई तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे।

दूसरा संस्करण

इस माला की पुस्तकें बहुत ही लोकप्रिय हो रही हैं और हमें हर्ष है कि कुछ पुस्तकों का चन्द महीनों में दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। आशा है कि भारतीय संस्कृति और साहित्य के प्रेमी पाठक इन पुस्तकों को और भी चाव से अपनावेंगे।

—मंत्री

भूमिका

'किरातार्जुनीय' के लेखक महाकवि भारवि का नाम संस्कृत साहित्य में खूब प्रसिद्ध है। महाकवि कालिदास, दण्डी और माघ के समान उनकी मानता है। संस्कृत कविता का अध्ययन करनेवालों के लिए जिन तीन ग्रंथों का पढ़ना बहुत ही आवश्यक है उनमें एक 'किरातार्जुनीय' है। इस ग्रंथ की रचना-शैली बहुत ही मनोहर और 'अर्थ-गौरव' से पूर्ण है। प्रकृति का वर्णन तो इतना सुन्दर है कि मन मुग्ध हो उठता है। भारवि राजनीति के पण्डित माने गए हैं। पूरे काव्य में नीति भरी पड़ी है। वह परम शैव थ।

वह कब हुए और कहां के रहनेवाले थे इस बारे में संस्कृत के दूसरे कवियों की तरह कुछ भी निश्चय से नहीं कहा जा सकता। इनके ग्रंथ से इनके जीवन के बारे में भी कुछ पता नहीं लगता, परन्तु दक्षिण के एक शिला-लेख और आचार्य दण्डी ने अपनी पुस्तक 'अवन्तिसुन्दरी कथा' में अपने पुरखों का जो वृत्तान्त दिया है, उससे पता चलता है कि वह दक्षिण देश के निवासी थे और चालुक्य वंश के राजा विष्णुवर्धन की सभा के पण्डित थे। राजा विष्णुवर्धन पुलकेशी द्वितीय का छोटा भाई था और ६१५ ई० के आसपास महाराष्ट्र में राज्य करता था। इन सब उल्लेखों से पता चलता है कि भारवि सातवीं सदी के आरम्भ में हुए हैं।

भारवि ने बस एक ही ग्रंथ लिखा है और उसीके बल पर वह अमर हैं। बड़े-से-बड़े अर्थ को थोड़े-से शब्दों के द्वारा प्रकट करना उनकी कविता की विशेषता है। इस ग्रंथ की कथा महाभारत से ली गई है।

—सम्पादक

किरातार्जुनीय

कौरव-पांडवों की कहानी कौन नहीं जानता। उनमें आपस में बड़ी अनबन थी। कौरव चाहते थे कि हस्तिना-पुर का राज्य उनके हाथ में रहे। उन्होंने कई बार पांडवों और उनकी पत्नी द्रौपदी का अपमान भी किया; किन्तु पांडवों ने चुपचाप उसे सह लिया और अनबन को आगे नहीं बढ़ने दिया।

बड़े पांडव युधिष्ठिर में जहां अनेक गुण थे, वहां एक अवगुण भी था। वह जुआ खेलने की कला में बड़े निपुण थे। कौरवों ने युधिष्ठिर के इस अवगुण से लाभ उठाने की पूरी चेष्टा की। दुर्योधन उनमें सबसे बड़ा था। जब पांडव इन्द्रप्रस्थ में राज्य करते थे तो उसने युधिष्ठिर को जुआ खेलने के लिए न्यौता भेजा। युधि-ष्ठिर ने यह न्यौता स्वीकार कर लिया। जुए का खेल हुआ। बाजी लगाई गई कि जो हार जाय वह बारह बरस तक जंगल में निवास करे। युधिष्ठिर हार गए। एक बार तो राजा धृतराष्ट्र ने उनका राज्य उनको लौटा दिया, परन्तु दुर्योधन हार माननेवाला नहीं था। उसने युधिष्ठिर को एक बार फिर जुआ खेलने का न्यौता दिया। इस बार भी युधिष्ठर हारे और अपने भाई भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव तथा पत्नी द्रौपदी के साथ तेरह वर्ष के लिए वन चले गये।

इनमें से एक वर्ष अज्ञातवास में रहने की शर्त थी। वे द्वैतवन नाम के एक जंगल में जाकर रहने लगे।

वहां रहते जब कई वर्ष बीत गए तब एक दिन युधिष्ठिर ने दुर्योधन का समाचार जानने के लिए एक वनवासी किरात को हस्तिनापुर भेजा। किरात ब्रह्मचारी का वेश धारण कर वहां गया और दुर्योधन का समाचार लेकर वापस लौट आया। यहीं से इस काव्य की कथा आरम्भ होती है।

: १ :

किरात ने महाराजा युधिष्ठिर से कहा, "दुर्योधन इस समय राज्य का नीतिपूर्वक शासन कर रहा है। मैं राजा हूं, मेरा यही धर्म है, ऐसा समझकर वह शत्रु और मित्र के साथ उचित व्यवहार करता है। बड़े-बड़े राजा उसे कर देते हैं। उसके राज्य में बढ़िया खेती होती है। प्रजा प्रसन्न है। उसने दुःशासन को युवराज बनाया है और स्वयं यज्ञ आदि करता रहता हैं, पर वह आपकी चर्चा नहीं सुन सकता। वह आपको मिटाना चाहता है। आपको भी उसका नाश करने के लिए उचित उपाय करना चाहिए।"

यह सुनकर महाराजा युधिष्ठिर ने वनवासी को पुरस्कार देकर विदा किया और सब समाचार अपने भाइयों तथा पत्नी को सुनाया। द्रौपदी यह समाचार सुनकर बड़ी दुखी हुई। दुर्योधन कई बार उसका अपमान कर चुका था। उससे चुप नहीं रहा गया। बोली, "हे नाथ, स्त्री पुरुष को उपदेश दे, यह उचित नहीं समझा जाता,

किन्तु फिर भी मेरे अन्दर जो दर्द भरा हुआ है वह मुझे कुछ कहने के लिए विवश कर रहा है। क्षमा कीजिए। इन्द्र के समान तेजवाले आपके पुरखों ने जिस धरती का राज भोगा उसे आपने यों ही खो दिया। आपके सिवा ऐसा और कौन कर सकता है ? जो दुष्टों के साथ दुष्टता का बर्ताव नहीं करते वे सदा हारते हैं। जो भीम पहले उत्तम रथ पर चढ़कर चलते थे वह आज पैदल पथरीली धरती पर घूमते हैं, इन्द्र के समान अर्जुन पेड़ों की छाल पहनकर जीवन बिता रहे हैं। नकुल और सहदेव दोनों जंगली हाथियों की तरह हो गये हैं। सबकी दुर्दशा देखकर आपका क्रोध क्यों नहीं भड़कता ? आपकी अपनी क्या दुर्दशा हो गई है। जंगली फल खाते-खाते आपका शरीर दुर्बल नहीं हुआ है, यश भी दुबला गया है। इसलिए आप अब शांति छोड़कर शत्रुओं को नष्ट करने के लिए अपना पुराना तेज धारण कीजिए। शांति, धैर्य तथा संतोष तो मुनियों के लिए है, राजाओं के लिए नहीं। आप सबकुछ कर सकते हैं। आपका तेज असीम है। फिर भी शत्रु पर विजय पाने के लिए आप समय की बाट जोह रहे हैं, यह उचित नहीं है। विजय चाहनेवाले राजा समय के अनुसार किसी-न-किसी बहाने सन्धि को भी तोड़ देते हैं।"

द्रौपदी की बातें सुनकर भीम से भी चुप नहीं रहा गया। वह बोले, "महाराज, द्रौपदी ने इस समय जो कुछ कहा है, वह बहुत सुन्दर है। स्त्री का कहा होने के कारण वह उपेक्षा करने योग्य नहीं है। अचरज की बात तो यह है कि आपके पास देवताओं को भी विस्मय में

डालनेवाला पुरुषार्थ है, फिर भी शत्रुओं ने आपकी यह दुर्दशा कर दी है। माना इस समय आपके पास शक्ति नहीं है, फिर भी यदि आप शत्रु को जीतने के लिए चेष्टा करें तो प्रजा आपका स्वागत करेगी। शूरवीरों का सच्चा सहायक पुरुषार्थ है। यदि आप तेरह साल पूरे होने की राह देखेंगे तो राज्य का सुख भोगकर दुर्योधन अवधि के बाद भी आपका राज्य नहीं लौटायगा। इसलिए आलस्य छोड़कर शत्रुओं पर विजय पाने का उपाय कीजिए और हम लोगों को आदेश दीजिए। शत्रुओं में ऐसा कौन है जो आपके छोटे भाइयों के पराक्रम को सह सके।"

भीम की ये बातें सुनकर उसे शांत करते हुए युधिष्ठिर बोले, "भीम, तुमने जो कुछ कहा है वह ठीक है, किन्तु प्रत्येक कार्य सोच-विचारकर करना चाहिए। असमय में क्रोध करना अनुचित है। शत्रु का नाश करने के लिए शांति से बढ़कर और कोई बढ़िया साधन नहीं है। यदि हम अवधि के बाद नियमपूर्वक युद्ध की घोषणा करेंगे तो सब राजा हमारी सहायता करेंगे। यह समझ लेना कि अधिक समय हो जाने पर दूसरे राजा दुर्योधन के पक्ष में हो जायंगे तुम्हारी भूल है। अहंकारी मनुष्य का साथ समय पड़ने पर सभी छोड़ देते हैं, क्योंकि वे उसके दुर्व्यवहार से मन-ही-मन अप्रसन्न रहते हैं। इसलिए हमारे लिए वनवास की अवधि को शांति के साथ बिताना ही उचित है।"

महाराजा युधिष्ठिर भीम को इस प्रकार समझा ही रहे थे कि अचानक भगवान वेदव्यास वहां आ पहुचे। उनको देखते ही सबने उनका स्वागत-सम्मान किया।

उन्हें ऊंचे आसन पर बिठाया। फिर उनकी आज्ञा पाकर आप भी हाथ जोड़कर उनके सामने बैठ गए।

उसके बाद व्यासजी का गुणगान करते हुए युधिष्ठिर ने बड़ी चतुरता से उनके आने का कारण पूछा। व्यासजी धृतराष्ट्र की निन्दा और युधिष्ठिर की प्रशंसा करते हुए बोले, "आपके शत्रुओं ने आपके साथ जो बुरा बर्ताव किया है उससे आपका भला ही हुआ है। लेकिन आपका शत्रु, बल और हथियारों में, आपसे बढ़ा हुआ है। आपको उससे बढ़ने का उपाय करना होगा। भीष्म पितामह, कर्ण और द्रोणाचार्य जैसे योद्धा उसके पक्ष में हैं। उनको पराजित करने के लिए दिव्य अस्त्र चाहिए। मैं अर्जुन को एक मंत्र सिखाता हूं। उसके द्वारा वह इन्द्र को प्रसन्न करेंगे और दिव्य अस्त्र प्राप्त करके शत्रुओं पर विजय पायंगे। मेरा इस समय यहां आने का यही उद्देश्य है।" इसके बाद वेदव्यास नें अर्जुन को वह मंत्र सिखाया और बोले, "हे अर्जुन, तुम मेरे कहने के अनुसार शस्त्र धारण करके मुनियों की भांति तपस्या करो। एक यक्ष को मैं तुम्हारे साथ किये देता हूं। वह तुम्हें तपस्या के स्थान पर पहुंचा आवेगा।"

ऐसा कहकर व्यासजी वहां से चले गए और यक्ष वहां आकर उपस्थित हो गया। तब भाइयों से विदा मांगकर अर्जुन उसके साथ चलने को तैयार होने लगे। द्रौपदी नें उस समय एक वीर-पत्नी की भांति उन्हें विदा दी। उसके हृदय में वियोग का दुःख तो था, पर सन्तोष भी कम नहीं था। अर्जुन शत्रुओं पर विजय पाने के लिए

ही तो तप करने जा रहे थे।

द्रौपदी की बातें सुनकर अर्जुन कुछ उत्तेजित हो उठे। उन्हें शत्रुओं के प्रति क्रोध भी उत्पन्न हुआ और वह अस्त्र-शस्त्र लेकर यक्ष के साथ हिमालय की ओर चल पड़े।

: २ :

शरद ऋतु का सुहावना समय था। मार्ग दिखाता हुआ यक्ष अर्जुन के साथ चला जा रहा था। कहीं कीचड़ का नाम नहीं था। तालाबों में कमल खिले हुए थे। खेतों में अनेक प्रकार के धानों की बालें झूम रही थीं। गांवों के हर घर में फूल खिल रहे थें। अर्जुन शरद् ऋतु की यह सुन्दर शोभा देखकर बड़े प्रसन्न हुए। यह देखकर यक्ष बोला, "हे अर्जुन, यह समय सचमुच बड़ा सुन्दर मालूम होता है। सरोवर और नदियों का जल स्वच्छ हो गया है। आकाश बादलों के न होनें से निर्मल दिखाई देता है। मंद-मंद सुगंधित वायु बह रही है। खेतों का जल, हरी लताएँ, सफेद कमल और पके हुए धान की पीत कांति से इन्द्र-धनुष की शोभा प्रकट हो रही है। हंस कूज रहे हैं। हरिणियाँ मधुर कंठवाली गोपियों का गाना सुनकर चरना भूल गई हैं।"

इस प्रकार अर्जुन से शरद् ऋतु की शोभा का वर्णन करता हुआ यक्ष हिमालय पर्वत पर आ पहुंचा। यहां आकर उसने कहा, "हिमालय पर धरती, आकाश और स्वर्ग सबके निवासी रहते हैं। यह रत्नों की खान है। नाना प्रकार के पुष्पों से यह शोभित है। इसके शिखर बहुत ऊँचे और हिम से ढके हुए हैं। इसका मध्य भाग बहुत

सुन्दर है। वहां से जान्हवी आदि सुर-सरिताएं प्रवाहित हो रही हैं। इसका उच्च शिखर आकाश-मंडल को छूने जा रहा है। मानसरोवर आदि पवित्र स्थान यहीं पर हैं। इसी हिमालय पर गहन वन हैं जो बड़े-बड़े वृक्षों और औषधियों से शोभित हैं, जहां हिंसक पशु निर्भय होकर विचर रहे हैं। इसी पर्वत पर भगवती पार्वती ने अपनी अद्‌भुत तपस्या से भगवान शंकर को प्राप्त किया था।

"देखो अर्जुन, यहीं पर कैलास पर्वत है। यहीं भगवान शंकर अपने गणों के साथ निवास करते हैं। और यह इन्द्रकील पर्वत कैसा मनोरम है! इसकी गुफाएं बड़ी सुन्दर हैं। यह पर्वत इन्द्र को बहुत प्यारा है। यहां के वन बड़ें मनोहारी हैं। यहां की मरकत मणि की शोभा के सामने सूर्य की किरणें भी फीकी पड़ गई हैं।"

इस प्रकार वहां की शोभा का वर्णन करता हुआ यक्ष अन्त में बोला, "हे अर्जुन, अब आप शस्त्र धारण करके इसी इन्द्रकील पर्वत पर तपस्या कीजिए। तपस्या के समय बहुत-सी बाधाएं पैदा होंगी। बिना विघ्न-बाधाओं के कल्याण होना कठिन है। भगवान शंकर और लोकपाल आपकी सहायता करें।"

इस प्रकार प्यारे और हितकर वचन कहकर यक्ष वहां से चला गया और अर्जुन वहीं इन्द्रकील पर्वत पर रहने लगे।

: ३ :

इन्द्रकील पर्वत की अद्‌भुत छटा को देखकर अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए। तपस्या करने में उनका उत्साह बढ़ने

लगा। सांसारिक विषयों से अपने मन को हटाकर और इन्द्रियों को अपने वश में करके वह बहुत कठिन तप करने लगे। उन्होंने शस्त्र धारण किये हुए थे, परन्तु उनका स्वभाव बड़ा सरल था। उन्होंने अपने आचरण से ऋषियों को जीत लिया। उनके मुख पर एक अद्‌भुत तेज दिखाई देने लगा। उनके सिर की जटाएं बढ़ गईं। धनुष धारण किये उनको तपस्या में लगे देखकर हिंसक पशुओं तथा सर्प आदि जीवों ने हिंसाभाव छोड़ दिया। पवन बहुत ही सुखद और शीतल होकर बहने लगा। पौधे नये पत्तों से हरे-भरे दिखाई देने लगे। आकाश निर्मल हो गया और धूल दूर हो जाने के कारण धरती शांत दिखाई देने लगी।

अर्जुन के तप का ऐसा प्रभाव देखकर वहां के वनचर इन्द्र के पास गये और उन्होंने उनसे अर्जुन की अद्‌भुत तपस्या का वर्णन किया। वनचरों के मुख से अर्जुन की तपस्या का वर्णन सुनकर इन्द्र हृदय में बड़े प्रसन्न हुए, फिर भी उन्होंने अर्जुन की परीक्षा लेने के लिए अप्सराओं और गन्धर्वों को इन्द्रकील पर्वत पर भेजा। उनकी रक्षा के लिए इन्द्र ने हाथी, रथ, घोड़ों तथा अपने सेवकों को भी जाने का आदेश दिया। आज्ञा पाकर वे सब लोग चल पड़े। मार्ग में बड़ी तेज धूप थी। उनके शरीर से पसीना टपकने लगा। लेकिन जब वे सब मंदाकिनी के समीप पहुंचे तो उन्हें बड़ी शांति मिली। शीतल वायु ने उनका ताप दूर कर दिया। उस समय आकाश का दृश्य भी अद्‌भुत दिखाई देता था। रथों में जुते हुए घोड़े और इन्द्र की सेना सब

आकाश-गंगा की भांति जान पड़ते थें। वे आपस में बातें करते जाते थे कि इन्द्र का काम कैसे किया जायगा। यही सोचते-सोचते वे इन्द्रकील पर्वत पर पहुंचे और गंगा के किनारे की सुरम्य भूमि पर अपने शिविर लगाये।

इन्द्रकील पर्वत की शोभा का वर्तन नहीं हो सकता था। वह एक बसे हुए सुन्दर नगर की भांति दिखाई देने लगा। हाथियों की जलक्रीड़ा के कारण गंगाजल का रंग पलट गया। अप्सराओं के सौन्दर्य से पर्वत और पेड़ चमक उठे। घूम-घूमकर वे वहां की छटा देखने लगीं। कहीं ऊँचे सें सरिताएं गिर रही थीं, कहीं फूलों से लदी लताओं पर भौंरे गूंज रहे थे। वे फूलों पर मुग्ध हो गईं। इसके बाद वे जलविहार के लिए चलीं। जलाशयों और नदियों में स्नान करते हुए उन्होंने जिस प्रकार क्रीड़ा की, उससे जंगल में मंगल दिखाई देने लगा। जब सायंकाल आया तो सूर्य की लालिमा से पश्चिम दिशा लाल हो गई। धीरे-धीरे अंधकार नें चारों दिशाओं को ढक लिया। वन, उपवन, नदी और पर्वत सब अंधकार में डूब गए। सूर्य के अस्त हो जानें से कमलिनी का मुख मलिन हो गया और वह मुरझा गई।

लेकिन समय कभी एक-सा नहीं रहता। पूर्व दिशा में चन्द्र ने उदय होकर अन्धकार का नाश कर डाला। वह उज्ज्वल हो गई। यद्यपि चन्द्र ने अपनी चांदनी से आकाश को पूर्णरूप सें प्रकाशित नहीं किया था फिर भी रात्रि नई बहू की तरह लगती थी, जिसका घूँघट हट गया हो और वह लज्जा के भार से दबी जा

रही हो। फिर चन्द्रमा की किरणें चारों ओर छा गईं और अप्सराएं विहार करने के लिए निकल पड़ीं। इसी प्रकार उन्होंने सारी रात बिता दी। सबेरा हुआ। बन्दीजन मंगलगान करनें लगे। शीतल मन्द सुगन्धित वायु बहने लगी और दिशाएं पक्षियों के कलरव से मुदित दिखाई देने लगीं।

दिन निकलनें पर अप्सराएं अच्छी तरह सजधज कर उस स्थान पर पहुंचीं, जहां अर्जुन तपस्या कर रहे थे। उन्हें लुभाने के लिए वे तरह-तरह के उपाय करनें लगीं। अर्जुन तब गंगा के तट पर तपस्या में लीन थे। यम-नियम का पालन करने सें उनके अंग दुबले हो गये थे, तो भी वे अटल थे। उनके शरीर से प्रभा निकल रही थी। उनका वेश मुनियों का था, पर तेज में वह इन्द्र के समान लगते थे। यह देखकर गन्धर्व मृदंग और वीणा बजाने लगे। सारी ऋतुएं एक साथ वहां आ गईं। आकाश में बादलों की काली घटा छा गई। बिजली चमकने लगी। वर्षा से तपोवन गीला हो गया। कोयल की सुरीली ध्वनि होने लगी। मालती के फूल खिल उठे। मलय पवन मन को हरने लगा। बारी-बारी से हरेक ऋतु ने अपना-अपना प्रभाव दिखाया, पर अर्जुन का मन तनिक भी तप-ध्यान और वन्दना से नहीं डिगा। गन्धर्वों के वीणा-वादन का भी अर्जुन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। अब अप्सराएं अपने रूपजाल में फंसाने के लिए अर्जुन के समीप जा पहुंचीं। वह अपने नाचगान व हावभाव से अर्जुन का तप भंग करने की कोशिश करने लगीं, किन्तु उन्हें भी सफलता नहीं मिली।

तपस्वी अर्जुन के तप-साधन के सामने उन अप्सराओं तथा गन्धर्वों के सारे प्रयत्न असफल हो गए। अन्त में वे सब निराश होकर लौट गए।

: ४ :

गन्धर्वों और अप्सराओं के लौट आने पर इन्द्र स्वयं उस स्थान पर आये जहां अर्जुन तपस्या कर रहे थे। उन्होंने बूढ़े मुनि का वेश धारण किया था, लेकिन उनका तेज उसी तरह चमक रहा था जैसे सूरज बादलों से ढका हुआ हो। उन्हें अपने सामने देखकर अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए और उनका सत्कार कर उन्हें उच्च आसन पर बिठाया। थोड़ी देर आराम करने के बाद इन्द्र ने अर्जुन को उपदेश देते हुए कहा, "हे अर्जुन तुमने अच्छा किया जो युवावस्था में तप कर रहे हो। मैं तो इस उम्र में भी संसार में फंसा हुआ हूं। तुम्हारे तप से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूं। तुम सुन्दर हो, गुणी भी हो। यह सोने में सुगन्ध जैसा है। संसार के प्राणियों को जन्म लेने में कितना दुःख होता है। सारा जीवन विपत्तियों से भरा हुआ है। फिर मृत्यु अपना विकराल मुँह फैलाये सामने खड़ी रहती है। इसलिए सज्जन लोग मुक्ति की इच्छा से ही तपस्या करते हैं। तुम्हारा मन शुद्ध है। तुम भी ऐसा ही कर रहे हो, लेकिन एक बात समझ में नहीं आती। तुमने योद्धा का वेश क्यों धारण किया है ? यह शांति का समर्थन नहीं करता। जान पड़ता है, तुम्हारी तपस्या मोक्ष प्राप्ति के लिए नहीं है। तुम्हें यदि लक्ष्मी की चाह है तो वह चंचला है। शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने के लिए तप कर रहे हो तो आत्म-पीड़ा की

भांति पर-पीड़ा भी उचित नहीं है। हां, यदि तुम चाहो तो मुक्ति बड़ी आसानी से मिल सकती है। सो तुम युद्ध का ध्यान छोड़ दो। अगर जीतना है तो इन्द्रियों को जीतो।"

इस प्रकार शस्त्र छोड़ देने का उपदेश देकर इन्द्र जब चुप हो गये तो अर्जुन उनसे विनयपूर्वक बोले, "भगवन, आपने जो बातें कही हैं वे उचित ही हैं। आपका वचन वेद-वचन के समान है। उसके बारे में तर्क की आवश्यकता नहीं है, परन्तु जान पड़ता है कि आप मेरे तप का उद्देश्य नहीं जानते। इसलिए मुनि की भांति उपदेश दे रहे हैं। मैं आपके उपदेश का असली पात्र नहीं हूं। मैं क्षत्रिय हूं। मैं पांडु और कुन्ती का पुत्र अर्जुन हूं। हमारे चचेरे भाई दुर्योधन ने हम लोगों का सर्वस्व छीन लिया है। अपने बड़े भाई युधिष्ठिर की आज्ञा से इस दुस्तर तप को पूर्ण करने के लिए मैं यहां आया हूं। भगवान् वेदव्यास ने मुझे आदेश दिया है कि मैं अस्त्र-शस्त्र धारण कर इस पर्वत पर तपस्या कर देवताओं के राजा इन्द्र को प्रसन्न करूं। युधिष्ठिर दुर्योधन के साथ कपट-जुए के खेल में अपना सर्वस्व हारकर द्वैतवन में निवास कर रहे हैं। वह मेरे विरह में मेरे अन्य भाइयों तथा द्रौपदी के साथ अत्यन्त दुखी हो रहे हैं। मैं आपसे अधिक क्या कहूं, शत्रुओं ने हमारे शरीर का वस्त्र भी उतरवा लिया है। बड़े दुःख की बात तो यह है कि भरी सभा में उन्होंने द्रौपदी का अपमान किया। दुर्जनों के साथ मैत्री करना भी बुरा होता है। उस-का परिणाम यह हुआ कि अजातशत्रु युधिष्ठिर की भी दुर्योधन आदि से शत्रुता बढ़ गई। इस संसार में मानहीन

प्राणियों को लोग तिनके से भी तुच्छ समझते हैं। इसलिए मैं सुख की अभिलाषा नहीं रखता। बुढ़ापे और मृत्यु के भय से मोक्ष भी नहीं चाहता। मैं तो शत्रुओं पर विजय पाने के लिए ही यह तप कर रहा हूं। मेरे बड़े भाई युधिष्ठिर अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार शत्रुओं पर विजय पाने की अभिलाषा में मेरी ओर टकटकी लगाये बैठे हैं। मैं उनकी आज्ञा का उल्लंघन कदापि नहीं करना चाहता। मेरी प्रतिज्ञा है कि या तो मैं इस पर्वत पर अपने प्राणों का अन्त कर दूंगा या अपने इष्टदेव इन्द्र की आराधना करके शत्रुओं पर विजय प्राप्त करूंगा।"

यह सुनकर इन्द्र ने अपना असली रूप प्रकट कर दिया और अर्जुन को छाती से लगा लिया। उन्होंने अर्जुन को भगवान शंकर की आराधना करने का उपदेश दिया। कहा, "जब तुम शंकर को प्रसन्न कर लोगे तो मैं तुम्हें ऐसी शक्ति दूंगा जो शत्रुओं का मुँह फेर देगी।" इस प्रकार कहकर वे वहां से चले गए।

इन्द्र की बात मानकर अर्जुन निर्भय होकर भगवान शंकर की आराधना के लिए कठिन तपस्या करने लगे। इस प्रकार इन्द्रियों को वश में करके उपवास तथा व्रत करते हुए, सूर्य के सामने एक पैर से खड़े होकर, अर्जुन को तपस्या करते कई वर्ष बीत गए। उनका शरीर दुर्बल हो गया, किन्तु मन की शक्ति बढ़ती गई। उनका मुख सूर्य की तरह शोभावाला हो गया। सिर की जटाएं चमकने लगीं। धनुष को तानकर तपस्या करते हुए रुद्र की भांति अर्जुन ने पर्वत पर निवास करनेवाले वनचरों,

तपस्वियों और मुनियों को विस्मय में डाल दिया।

अर्जुन के तप के प्रभाव को मुनिगण भी जब सहन न कर सके तब वह स्वयं भगवान शंकर की शरण में कैलाश पर्वत पर पहुंचे और उनकी स्तुति करने लगे। स्तुति सुनकर शंकर उनके सामने प्रकट हुए। तब मुनियों ने अर्जुन की भीषण तपस्या का वर्णन इस प्रकार किया: "भगवान सूर्य की किरणों की भांति एक तेजस्वी पुरुष इन्द्रकील पर्वत पर तप कर रहा है। वह तपस्वी होता हुआ भी धनुष-वाण, कवच, खंग, जटा, वल्कल और मृग-चर्म धारण किए हुए है। जब वह चलने लगता है तब पृथ्वी कांप उठती है। इसलिए हम लोगों को संदेह हो रहा है कि क्या वह अपनें तप के तेज से सारे विश्व को जीत लेना चाहता है ? या एक ही बार में संहार करना चाहता है ? या मुक्ति चाहता है। हम लोग उसके तेज को सहन करने में असमर्थ हो रहे हैं। भगवन, आप सब कुछ जानते हुए भी क्यों उसकी उपेक्षा कर रहें हैं ? आप ही हम सबकी रक्षा कर सकते हैं। इसीलिए हम आपकी शरण में आये हैं।"

भगवान शंकर ऋषियों की बात सुनकर गंभीरता-पूर्वक बोलें, "तपस्वियो, यह तेजस्वी पुरुष बदरिकाश्रम तपोवन में रहनेवाले भगवान नारायण का अंश है। यह सारे संसार को दुःख देनेंवाले प्रबल शत्रुश्रों को जीतनें की अभिलाषा से मुझे प्रसन्न करनें के लिए तप कर रहा है। यह और कृष्ण दोनों ब्रह्मा की प्रार्थना से असुरों का नाश करने के लिए मनुष्य रूप में रहते हैं। देखिये, अर्जुन

को देवकार्य में लगे हुए देखकर मूक नाम का दानव वाराह का रूप धारण कर छल से उसे मारने की तैयारी कर रहा है। इसी समय मैं किरात रूप धारण करके वाण चलाकर उसका वध करूंगा। अर्जुन भी वाराह को मारने के लिए मेरे साथ ही वाण चलाएगा और उस शिकार के लिए मुझसे झगड़ा करेगा। उस समय मेरे साथ घोर संग्राम करते हुए अर्जुन के पराक्रम को आप लोग देखिएगा।"

इस प्रकार तपस्वियों को समझाकर शिवजी ने किरात का वेश धारण किया। किरात सेना भी तैयार होकर सिंह के समान गरजने लगी। शिव के आदेशानुसार वह शिकार के बहाने चारों ओर से उस ओर चल पड़ी जहां अर्जुन तपस्या कर रहे थे। सब ओर भगदड़ मच गई। स्वयं किरात-भेष-धारी शिवजी सबको भयभीत करते हुए अर्जुन के आश्रम के समीप जा पहुंचे। उसी समय मूक दानव वाराह के वेश में अर्जुन की ओर धावा करता हुआ आगे बढ़ रहा था। शिवजी भी किरातों के साथ उसके पीछे-पीछे चल पड़े।

: ५ :

अर्जुन ने अत्यन्त भयंकर शरीरवाले और पर्वत को खंडहर करने में समर्थ बड़े-बड़ें दाँतोंवाले वाराह रूप धारण किये हुए उस मूक दानव को दूर से आते हुए देखा। उसे देखते ही वह तर्क-वितर्क में पड़ गए। वह सोचने लगे कि यह वाराह अपने कठोर दांतों से वृक्षों की जड़ को उखाड़ता तथा पर्वत को तोड़ता हुआ इधर ही आक्रमण करने के लिए क्यों आ रहा है? यद्यपि इस तपोवन के

हिंसक पशुओं ने अपनी हिंसा-वृत्ति त्याग दी है, फिर भी यह मेरी ओर क्यों दौड़ा आ रहा है? कहीं दैत्य या दानव लोग ही तो वाराह रूप धारण करके मुझ-पर आक्रमण करना नहीं चाहते? अवश्य ही वाराह के रूप में यह कोई दानव है, क्योंकि इसे देखकर मेरा मन क्षुब्ध हो रहा है। मेरे जैसे तपस्वी का यहां कोई शत्रु नहीं है, यह भी समझना भूल है, क्योंकि अकारण द्वेष करनेवाले दुर्जनों के लिए कोई भी कार्य असंभव नहीं है। इसलिए यह कोई माया-रूप धारी दानव ही जान पड़ता है। यह या तो दुर्योधन का भेजा हुआ है या अश्वसेन, जिसके भाईबन्द खांडव वन में जल गये थे, बदला लेने आया है या यह भीम का कोई शत्रु है। जो कोई भी हो, मैं इस हिंसक पशु को अवश्य मारूंगा।

यह सोचकर अर्जुन गांडीव धनुष पर वाण चढ़ाकर उस वाराह को मारने के लिए तैयार हो गए। उनको तैयार देखकर शिवजी भी पिनाक धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर वाराह को मारने के लिए उसके पीछे अग्रसर हुए। शिवजी ने तुरन्त वाराह को लक्ष्य करके वाण चलाया। वाराह आहत होकर गिर पड़ा और वाण पृथ्वी में घुस गया। अर्जुन ने भी उसी समय वाराह को मारने के लिए वाण छोड़ा। वह वाण भी जीव-जंतुओं को व्यथित करता हुआ अत्यंत तेजी से वाराह के शरीर को छेदकर पार हो गया। इस प्रकार दोनों के वाण लगते ही वाराह कटे वृक्ष की भांति गिरकर धराशायी हो गया। उसके बाद अर्जुन अपने वाण को लेने के लिए उस वाराह की

ओर चल पड़े। वहां जाकर उन्होंने चिंघाड़ मारकर मरते हुए वाराह को देखा और यह भी देखा कि शिवजी का भेजा हुआ एक किरात वहां उपस्थित है।

किरात ने अर्जुन को प्रणाम करके कहा, "भगवन, आपका तप बहुत ही उज्ज्वल और कीर्ति को बढ़ाने-वाला है। तपस्वी होते हुए भी आप हिमालय की भांति स्थिर तथा इन्द्र की भांति राजेन्द्र जान पड़ते है। आप ऐसे तपस्वियों के लिए मोक्ष भी दूर नहीं है, विजय प्राप्ति में तो कोई संदेह ही नही है। ऐसी स्थिति में आप मेरे स्वामी के वाण को लेने का प्रयत्न न करें, क्योंकि उनके ही वाण से इस वाराह की मृत्यु हुई है। महात्मा सदा सदाचार का पालन करते हैं। आप ही यदि उसका पालन न करेंगे तो सदाचार ही न रह जायगा। मेरी समझ में तो आप धोखे से दूसरे के वाण को लेने के लिए तैयार हो गए हैं। दूसरे के द्वारा मारे गए पशु का मारना ही आपके लिए लज्जाजनक है। यदि मेरे स्वामी इसे न मारते तो यह आपको मार डालता। मेरे स्वामी किरातपति के सिवा दूसरा कोई भी इस भयंकर वाराह को नहीं मार सकता था। इसलिए आपको किरातपति से लोहा लेना उचित नहीं है। इससे आप समूल नष्ट हो जायंगे। आप उनसे मैत्री कीजिए। यदि आप विनय के साथ याचना करेंगे तो वह वाण ही क्या, समस्त पृथ्वी को जीतकर आपको समर्पित कर सकते हैं। उनके पास से कोई भी याचक हताश होकर अभी तक नही लौटा है। हां, अभि-मान करेंगे तो आप कुछ न ले सकेंगे। आप सज्जन हैं।

मेरे स्वामी ने आपको क्षमा कर दिया। आप उनका वाण लौटा दीजिए। उनसे मित्रता करने से आपके सब मनोरथ पूरे हो जायंगे।"

किरात की ये बातें सुनकर अर्जुन आवेश में आ गए। फिर भी वह गंभीर और शांत स्वर में बोले, "आपकी वाणी बड़ी प्रिय और मधुर है। कुछ लोग केवल शब्दाडंबर को ही अपनाते हैं। कुछ अपने हृदय के भावों को स्पष्ट करने में चतुर होते हैं और कुछ गूढ़ अर्थ वाली वार्ता में पटु। किन्तु आपमें ये सभी गुण हैं। किरात होकर भी आप अपनी बोलने की विलक्षण प्रतिभा के बल से मुझे ठगना चाहते हैं। जब आपको उचित-अनुचित का इतना ध्यान है तो आपने अपने स्वामी को क्यों नहीं रोका? हो सकता है कि उन्होंने वाराह पर वाण चलाया हो, किन्तु वह वाण कहीं इधर-उधर छिप गया होगा। आपको मुझसे वाण मांगने की आवश्यकता नहीं, बल्कि पहाड़ पर उसे ढूंढ़ना चाहिए। मैं सदाचार का पूर्णरूप से पालन करनेवाला हूँ। खांडव वन को जलाते समय अग्नि ने मुझे अनगिनत वाण दिये थे। मुझे देवताओं के वाणों की कोई आवश्यकता नहीं, फिर किरात के वाण को लेकर मैं क्या करूंगा। मृग आदि तथा हिंसक पशुओं को जो मारता है वही उसका अधिकारी होता है। इसलिए वाराह मारनेवाले को ही वाराह मिलना चाहिए। इस संबंध में आपके स्वामी को झूठा अभिमान छोड़ देना चाहिए। इस वाराह को आपके स्वामी और मैंने एक साथ ही मारा है। यह कैसे मान लिया जाय कि उनके ही

वाण से यह मरा है ? यदि मुझे बचाने के लिए उन्होंने वाराह पर वाण चलाया था तो उनका उद्देश्य पूरा हो गया। अब उन्हें वाण का लालच क्यों हो रहा है ? तुमने कहा है कि वाण मांग लीजिए। स्वाभिमानी व्यक्तियों को दूसरों से याचना करना शोभा नहीं देता। जान पड़ता है कि आपके स्वामी मुझपर झूठा आरोप लगा रहे हैं। वह मेरे मित्र कैसे हो सकते हैं। यदि वह वाण लेने के लिए यहां आयंगे तो उनकी वही दशा होगी जो सांप की मणि लेनेवाले की होती है ।"

अर्जुन की बात सुनकर किरात शिवजी के पास पहुँचा। वह अर्जुन पर बहुत प्रसन्न थे, किंतु फिर भी उन्होंनें किरातों की सेना को आक्रमण करने का आदेश दे दिया। वह स्वयं पिनाक धनुष लेकर सेना का संचालन कर रहे थे। किरातों की सेना गरजती हुई अर्जुन की तपोभूमि की ओर बढ़नें लगी। पास पहुंचकर जब सब वीर एक-एक करके बल की परीक्षा कर चुके तब उन्होंने अर्जुन पर एक साथ ही आक्रमण कर दिया। अनेक अस्त्र-शस्त्रों से प्रहार किया गया, किन्तु अर्जुन का बाल भी बांका नहीं हो सका। इसी बीच गांडीव पर प्रत्यंचा चढ़ाकर, प्रलयकाल मचाने वाला रुद्ररूप धारण कर, अर्जुन किरात सेना पर टूट पड़ें। उनकी ओजपूर्ण वाणवर्षा से किरात सेना इधर-उधर भागने तथा मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिरनें लगी। उनकी वीरता देखकर किरात बड़े आश्चर्य में पड़ गए और उनके वाणों से जंगल के समस्त जीव भयभीत हो गए। देखते-देखते शिवजी की सेना अपने अस्त्र-शस्त्र छोड़कर भाग

खड़ी हुई। वह घबराहट के मारे अपने सेनापति किरातपति की ओर भी नहीं देख सकी। कार्तिकेय को पराजित करनेवाले अर्जुन भयभीत सैनिकों के पीछे चल पड़े। कार्तिकेय ने जब देखा कि किरात सैनिक भागे जा रहे हैं तब वह उन्हें आश्वासन देते हुए बोले, "संग्राम की भूमि को छोड़कर मत भागो। आपके लिए खेल और युद्ध समान हैं। आपने राक्षसों को पराजित किया है। मनुष्यों की तरह भागना आपको शोभा नहीं देता। इसके पास तो रथ, हाथी, घोड़ा और पैदल सेना तक नहीं है, फिर तुम लोग भयभीत होकर क्यों भाग रहे हो ? प्राचीनकाल में असुरों के साथ युद्ध करके तुम लोगों ने जो यश प्राप्त किया है वह भी आज तुमने खो दिया।"

इस प्रकार जब कार्तिकेय ने सेना को रोका तो शिवजी भी उसको "मत भागो", "मत भागो" कह कर आश्वासन देने लगे। इस आश्वासन से सेना में जीवन लौट आया। इसके बाद अर्जुन और किरातपति के बीच तुमल-युद्ध होने लगा। अर्जुन के द्वारा चलाये हुए वाणों को किरातपति ने बड़ी चतुराई से काट डाला। अर्जुन ने भी शिवजी के वाणों का साहस तथा वीरतापूर्वक सामना किया। आकाश उनके वाणों से भर गया। दोनों वीर एक-दूसरे के वाण काटने लगे। शिवजी हृदय में अर्जुन की वीरता देखकर अत्यन्त प्रसन्न थे, इसलिए उन्होंने ऐसे मर्मभेदी वाणों का प्रहार नहीं किया, जिनसे उनका अहित होने की संभावना थी। अर्जुन शिवजी के वाणों से आहत होकर भी तनिक नहीं घबराए। दोनों ओर का

रोमांचकारी युद्ध देखकर महर्षि, देव तथा किरात सब रोमांचित हो उठे।

: ६ :

तपस्वी अर्जुन किरातपति का अद्भुत संग्राम देखकर क्रोध और आश्चर्य से भर उठे। वह सोचने लगे—आश्चर्य है कि इस संग्राम में मतवाले हाथी भी नहीं हैं। अनेक पताकाओं से सजे हुए रथ भी नहीं दिखाई पड़ते। वेग से वायु की भांति उड़नेवाले घोड़ों का भी कहीं पता नहीं है। रणबांकुरे लड़ाकू वीरों की सेना भी कहीं नहीं जान पड़ती। उत्साहवर्धक रणभेरी, दुंदुभि तथा नगाड़ों की तुमुल ध्वनि का भी कहीं आभास नहीं होता। रुधिर की नदियां भी नहीं बह रही हैं। फिर क्यों इस किरात-युद्ध में मेरी शक्ति काम नहीं दे रही है? क्या यह कोई माया है या मेरी बुद्धि पर ही तो पत्थर नहीं पड़ गए हैं? या मैं वह अर्जुन नहीं हूँ, क्योंकि मेरे गांडीव धनुष से निकले वाण जिस प्रकार पहले पराक्रम दिखाते थे वैसा इस समय नहीं दिखा रहे। वास्तव में यह महान योद्धा किरात नहीं जान पड़ता। यह वाण चलाने और फिर उसे समेट लेने में अद्भुत और कुशल रणनायक जान पड़ता है। इसका शरीर अद्भुत है। इसके मुख पर कोई विकार नहीं है। इसकी वीरता को भीष्म तथा द्रोणाचार्य जैसे युद्ध-विद्या के आचार्यों से भी बढ़कर कह सकते हैं। अवश्य ही यह कोई देवता या दानव है। इसलिए इसके पराक्रम को दिव्यास्त्र द्वारा ही समाप्त किया जा सकता है।

यह सोचकर अर्जुन ने गांडीव पर प्रस्वापन नामक

अस्त्र चढ़ाया। उसके प्रभाव से सारी शत्रु सेना घोर अंधकार में पड़ गई और भयभीत होकर मूर्च्छित हो गई। कितने ही वीरों के हाथों से तलवारें पृथ्वी पर गिर पड़ीं। उस समय किरात वेश धारण कियें हुए शिव के ललाट से तेज की लपटें निकलने लगीं। उसनें अन्धकार को दूर कर दिया और किरात-सैनिक मूर्च्छा त्याग फिर युद्ध करने को तैयार हो गए। दिशाएं जगमगाने लगीं। सूर्य की किरणें चमकनें लगीं। तब अर्जुन ने प्रस्वापन अस्त्र को विफल जानकर नागपाश अस्त्र को चढ़ाया। नागपाश के प्रभाव से चारों ओर विषधर सांप जिह्वा लपलपाते हुए फैल गए और आकाश में विचरनेवाले पक्षी इधर-उधर भाग गए। भगवान शंकर ने नागपाश अस्त्र के प्रभाव को दूर करने के लिए गरुड़ास्त्र का प्रयोग किया। समस्त आकाश-मंडल में गरुड़-ही-गरुड़ दिखाई देने लगे। गरुड़ों के उड़ने तथा उनके परों के प्रभाव से आंधी-सी आ गई, जिससे वृक्ष जड़ से उखड़कर आकाश में उड़ने लगे। देखते-देखते गरुड़ों ने सर्पों को नष्ट कर डाला। अर्जुन ने जब देखा कि नागास्त्र का भी शत्रु पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा तो उन्होंने आग्नेय-अस्त्र का प्रयोग प्रारंभ कर दिया। आग की भयंकर लपटों से चारों ओर त्राहि-त्राहि मच गई। ऐसा जान पड़ने लगा जैसे यह महाअग्नि थोड़ी ही देर में विश्व को जलाकर राख कर देगी। ऐसी भयंकर अग्नि देखकर भगवान शंकर ने उसे शांत करने के लिए तत्काल वरुणास्त्र का प्रयोग प्रारंभ किया। उससे उसी समय आकाश-मंडल में बादलों की

काली घटा छा गई, और मूसलाधार वर्षा होने लगी। थोड़ी देर में आग की लपटें आप-से-आप शांत हो गईं। अग्नि के शांत होने के बाद आकाश तथा पृथ्वी तल हरा-भरा दिखाई देने लगा।

इस प्रकार शत्रुओं को पराजित करने के लिए अर्जुन ने जिन-जिन अमोघ अस्त्रों का प्रयोग किया, भगवान शंकर ने उनके विरोधी अस्त्रों का प्रयोग कर उन्हें विफल बना दिया। अर्जुन हताश-से होने लगे। उनके दिव्यास्त्र समाप्त हो गए, किन्तु वह शत्रु पर विजय नहीं प्राप्त कर सके। फिर भी धैर्य धारण कर वह युद्धभूमि में डटे रहे और अपने स्वाभाविक पराक्रम से शत्रुओं पर विजयी होने के लिए प्रयत्न करने लगे। उनकी भौंहें आवेश और क्रोध में तन गईं। धनुष तानकर वाणों की वर्षा करते हुए और सैनिकों को ललकारते हुए अर्जुन का मुखमंडल चमक उठा। किन्तु महेश्वर पर इसका कुछ प्रभाव नहीं हुआ। उनके सारे वाण विफल हो गए। यद्यपि भगवान शंकर अर्जुन की ढिठाई देखकर कुछ अप्रसन्न हुए, किन्तु मन-ही-मन उनके साहस की प्रशंसा करते हुए सोचने लगे——यद्यपि यह शत्रु से पराजित हो गया है, फिर भी अपने पराक्रम को बारबार प्रकट करता हुआ पीछे हटने को कदापि तैयार नहीं है। वह प्रत्येक दशा में शत्रु को पराजित करने का यत्न कर रहा है। अमोघ अस्त्र अब इसके पास नहीं हैं, फिर भी साधारण वाणों से ही पराक्रम दिखा रहा है।

महेश्वर इस प्रकार तर्क-वितर्क करते हुए अर्जुन से

स्वयं युद्ध करने को तैयार हुए। दोनों ओर से फिर घोर संग्राम होने लगा। अर्जुन के वाणों से आहत होकर शत्रु-सेना भागने लगी। सेना की यह दुर्दशा देखकर किरातपति क्षुब्ध हो उठे और साक्षात यमराज की भांति भयंकर रूप धारण कर धनुष की टंकार करने लगे। अर्जुन के चलाए हुए समस्त वाणों को शिवजी ने बीच ही में काट डाला। यह देखकर अर्जुन घबरा गए। लेकिन चैतन्य होकर वह फिर सेना पर वाण-वर्षा करने लगे। शंकर ने भी कुछ क्रुद्ध होकर अर्जुन के वाणों को फिर नष्ट कर दिया। उनके पास अब एक भी वाण नहीं बचा। शिव के मर्मघाती वाणों से अर्जुन अत्यन्त हताश और व्याकुल हो उठे। उनका कवच भी महेश्वर की माया से नष्टभ्रष्ट हो गया और उनके शरीर से अद्भुत कांति प्रकट होने लगी। उनके शरीर से रुधिर की धारा बह रही थी। फिर भी वह टूटे धनुष से शिवजी से बराबर लड़ते रहे और तनिक भी पीछे नहीं हटे। लेकिन जब वह भी नष्ट हो गया तो वह तलवार लेकर लड़ने लगे, किन्तु शिवजी के प्रभाव से वह भी अर्जुन के हाथ से छूट कर गिर पड़ी। अर्जुन खाली हाथ हो गए, लेकिन इस दुर्दशा पर भी उन्हें क्रोध न आया। उन्होंने फिर पत्थरों की वर्षा करनी प्रारंभ की, किन्तु शिवजी ने उसका भी निवारण कर दिया। अन्त में अर्जुन शिव से बाहुयुद्ध करने का निश्चय करके उनकी ओर दौड़ पड़े।

: ७ :

शिव के सामने पहुंचकर अर्जुन ने उनके वक्षस्थल

पर अपनी भुजाओं से प्रहार किया। शिवजी ने भी निषंग-सहित धनुष को दूर फेंककर लौह मुग्दर के समान अपनी मुष्टियों से अर्जुन को मारा। पर्वत की कंदराएं मुष्टि-प्रहारों की ध्वनि से गूंज उठीं। शंकर की छाती पर घावों से रुधिर बह रहा था। वह सन्ध्या के सूर्य की तरह शोभित थे। उनकी छाती पहाड़ की तरह थी। अर्जुन की मुष्टियाँ जब उससे टकराईं तो उनमें दर्द होने लगा। शंकर ने फिर मुष्टि-प्रहार किया तो अर्जुन के नेत्रों के सामने अंधकार छा गया और वह मदोन्मत्त की भांति लड़खड़ाने लगे। इससे उनकी क्रोधाग्नि और भी भड़क उठी। उन्होंने बड़े वेग से समीप जाकर, बलपूर्वक अपनी दोनों भुजाओं से शंकर की दोनों भुजाएं पकड़ लीं। शंकर और अर्जुन दोनों रणबांकुरे थे। उन्हें अपनी-अपनी भुजाओं पर अभिमान था। दोनों में परस्पर पर्वत को कंपानेवाला मल्लयुद्ध होने लगा।

मल्लयुद्ध के समय किरात सेना के सैनिकों को यह निर्णय करना बड़ा कठिन हो गया कि कौन अर्जुन है और कौन शंकर? या नीचे अर्जुन है अथवा भगवान शंकर? इन्द्रकील पर्वत भा शंकर तथा अर्जुन का भार सहन करने में असमर्थ हो गया। वह विचलित होकर हिलने-डुलने लगा। दोनों मल्ल-योद्धा हाथ-पैर के बंधन से मुक्त होकर भुजाओं पर ताल ठोंकते हुए उछल रहे थे। उनके पदाघातों से नदियों के तट गहराने लगे। भगवान शंकर ने वेगपूर्वक उछलकर ज्योंही अर्जुन को फिर पटकना चाहा, अर्जुन ने अपनी दोनों भुजाओं से

उनके चरण पकड़ लिये । आशुतोष उन्हें उठाकर पृथ्वी पर फेंकना चाहते थे, लेकिन चरण पकड़ने से उनका हृदय गद्गद् हो गया। उन्होंने अर्जुन को तत्काल गले से लगा लिया।

इसके बाद भगवान आशुतोष किरात वेश त्यागकर अपने असली रूप में प्रकट हो गए। यह देखकर अर्जुन गद्गद् हो उठे। उन्होंने साक्षात भगवान शिव को प्रणाम किया। तत्काल शंकर की महिमा से वह अपने अपूर्व वेश में, गांडीव, कवच तथा चर्म आदि सहित, सुशोभित होने लगे। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। मेघों ने जलवृष्टि प्रारंभ कर दी। रंग-बिरंगे मंदार पुष्पों की वर्षा होने लगी। आकाश निर्मल हो गया। बिना बजाए नक्कारों की गंभीर ध्वनि सर्वत्र आकाश में गूंज उठी। इन्द्र, वरुण, यम, कुबेर आदि अष्ट लोकपाल रत्नजटित विमानों पर बैठकर आकाश में विचरण करते हुए शिव की स्तुति करने तथा अर्जुन को आशीर्वाद देने लगे। शिव के गण भी अर्जुन की प्रशंसा करने लगे।

अपनी तपस्या को पूर्ण समझ कर अर्जुन बड़े सन्तुष्ट हुए और भगवान की स्तुति करने लगे, "भगवान, लोग जबतक आपके सामने नतमस्तक नहीं होते तबतक उन पर अनेक प्रकार की विपत्तियां आती हैं। बिना आपकी शरण में आये न तो अनिष्ट की निवृत्ति होती है और न इष्ट की प्राप्ति। लोग दान आदि कर्म करते हुए मुक्ति-प्राप्ति के लिए आपकी आराधना करते हैं, किन्तु आप निःस्वार्थ भाव से उनकी सेवा का फल प्रदान करते हैं, यह

केवल आपकी दया है। इसमें आपका कुछ भी स्वार्थ नहीं है। मनुष्य भक्ति के साथ आपका स्मरण करके भव-बन्धन से मुक्त हो जाता है। आपका ओढ़ने का वस्त्र रोमयुक्त गजचर्म है, मणिधर भीषण सर्प आपका कटि-भूषण अर्थात् करधनी है। आप मनुष्य के कपालों की माला धारण करते हैं। चिता की राख आपके मस्तक पर लगी रहती है। ये वस्तुएँ और चन्द्रमा की कला सब समान शोभा पाती हैं। वास्तव में आपकी कोई शारीरिक रूपरेखा नहीं है, परन्तु आप न जाने किस प्रकार स्त्री और पुरुष दोनों प्रकार का शरीर धारण किये हुए हैं। विरुद्ध वेश-भूषा होने पर भी आप ही में रम-णीयता पाई जाती है। इससे अधिक आश्चर्य की बात और क्या हो सकती है ? हे देव, आप चराचर प्राणियों के संहारकारी हैं। आपकी कृपा से संपूर्ण संसार जीवित है। आप पंच महाभूतों के कारण परमाणु के भी कारण हैं। हे नाथ, अब मुझे अभीष्ट सिद्धि प्रदान कीजिए। मेरे अपराधों को क्षमा कीजिए। आप शरणागत के अपराध नहीं देखते। आज की पावन घड़ी की बाट मैं वर्षों से देख रहा था। भगवान, आप मुझे ऐसा अमोघ अस्त्र प्रदान कीजिए, जिसका प्रयोग करके मैं बड़े भाई युधिष्ठिर के शत्रुओं पर पूर्ण विजय प्राप्त कर सकूं।"

आशुतोष शिव ने इस प्रकार स्तुति करते हुए अर्जुन को सान्त्वना दी और शत्रुओं पर पूर्ण विजय प्राप्त करने वाला पाशुपति नामक महान अस्त्र प्रदान किया। साथ ही धनुर्वेद की शिक्षा भी देनें का प्रबन्ध किया। धनुर्वेद

साक्षातरूप में वहां उपस्थित हुए। उन्होंने शिव की प्रदक्षिणा की और अर्जुन के पास चले गए । अर्जुन की अभिलाषाएं पूर्ण हो गईं। धनुर्वेद के जाने के बाद इन्द्र आदि देवताओं ने भी आकर विजय-प्राप्ति के कई अमोघ अस्त्र अर्जुन को प्रदान किये और उसकी स्तुति करने लगे। शंकर भगवान ने कहा, "जाओ, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो।"

इसके बाद शंकर के चरणों में प्रणाम करके और देवताओं की प्रशंसा प्राप्त करते हुए अर्जुन घर की ओर लौट चले। वहां पहुंचकर उन्होंने अपने बड़े भाई धर्मराज युधिष्ठिर को प्रणाम किया।

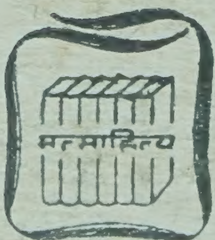
●

'संस्कृत साहित्य सौरभ' की पुस्तकें

१. कादम्बरी
२. उत्तररामचरित
३. वेणी-संहार
४. शकुन्तला
५. मृच्छकटिक
६. मुद्राराक्षस
७. नलोदय
८. रघुवंश
९. नागानन्द
१०. मालविकाग्निमित्र
११. स्वप्नवासवदत्ता
१२. हर्ष-चरित
१३. किरातार्जुनीय
१४. दशकुमार चरित : भाग १
१५. दशकुमार चरित : भाग २
१६. मेघदूत
१७. विक्रमोर्वशी
१८. मालतीमाधव
१९. शिशुपाल वध
२०. बुद्ध-चरित
२१. कुमारसंभव
२२. महावीर-चरित
२३. रत्नावली
२४. पंचरात्र
२५. प्रियदर्शिका
२६. वासवदत्ता
२७. रावणवध
२८. सौन्दरनन्द

मूल्य प्रत्येक का छः आना

१३



छः आना